अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

स्त्री चेतना और स्त्री का स्वत्व के लिए संघर्ष

राहुल
शोधार्थी, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक–124001 (हरियाणा)

बहुत लंबे समय से स्त्री की मुक्ति उसके वजूद और उसकी गरिमा के मद्देनजर दुनिया के कोने–कोने में अनेकानेक आंदोलन होते रहे हैं और यह संघर्ष आज भी जारी है। हालाँकि इन सबसे कहीं ना कहीं स्त्री की आजादी और उसके अस्तित्व को सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा है भले ही थोड़ा–सा ही सही। मगर यह सच है कि स्त्री के लिए यह सब इतना आसान नहीं है। स्त्री के स्वत्व और उसकी मुक्ति के लिए हमारा पुरुष सत्तात्मक समाज एक बहुत बड़ी बेड़ी है। इसके साथ–साथ एक और बड़ी बाधा आर्थिकता भी है। इन चीजों से बाहर आने के लिए यह लाजिमी है कि स्त्री के प्रयासों के साथ–साथ पुरुष समाज भी उदारता के साथ पेश आए। क्योंकि एक लंबी और जड़ व्यवस्था जो सदियों से एक अलिखित संविधान की तरह स्थापित है उसे तोड़ पाना या एकाएक उखाड़ फेंकना इतना आसान नहीं है।

दरअसल स्त्री चेतना और उसके स्वतंत्र अस्तित्व का प्रश्न बहुआयामी है। विशेषकर आज के बदलते परिवेश में यह सब और अधिक मुश्किल हो गया है। इस माहौल में आज स्त्री आत्म सजगता और आत्म चेतना से लैस नही हुई तो यकीनन उसके अस्तित्व पर बड़ा संकट है। इसके लिए उसे सक्रिय भूमिका में आना होगा– पूरी तैयारी के साथ।

"शताब्दियों से गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई भारतीय नारी को स्वतंत्र बनाकर –उसे मानवीय अधिकारों से विभूषित करना अपने में एक महान साधना है। स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी हमें इस कार्य में निर्णायक सफलता नहीं मिल पाई है। अधिकारों से वंचित, शोषित और पीड़ित नारी की अंतरात्मा का चीत्कार को क्षितिज के आरपार मुखरित करने का काम सिर्फ स्त्री ही कर सकती है।"[1]

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

उपर्युक्त कथन के केंद्र में देखे तो यह जरूरी है कि नारी के स्वभाव और उनकी चेतना पर बात करने से पूर्व भारतीय नारी के परम्परागत स्वरूप और आज के परिवर्तन या आधुनिक स्वरूप पर विचार करना बेहद जरूरी है। यह गौरतलब है कि आजादी से नवाजी जाने वाली स्त्री आज भी मानव समुदाय में उसकी गिनती समाज की एक सजग इकाई के रूप में ना होकर सिर्फ और सिर्फ एक वस्तु की तरह होती है। ऐसी स्थिति में उसके अस्तित्व, मुक्ति या स्वरूप की बात तो कोसों दूर हो जाती है। ऐसे में यह जरूरी है कि वह अपनी इच्छा शक्ति और संघर्ष को चेतना के साथ जमीन पर लाएँ ना कि सिर्फ और सिर्फ किताबी बातें। उसे यह जानना होगा कि वह मात्र एक देह ही नहीं बल्कि उस देह के अन्दर एक मस्तिष्क भी है और अब तक जिस यथास्थिति का स्वीकार करती आई है उससे इतर एक क्रांतिचता और संकल्प के साथ उसे आगे आना होगा। विशेषकर तब जब पितृसत्तात्म समाज में पूरी सामाजिक व्यवस्था का नियामक ही पुरुष है। क्योंकि इस विपरीत परिवेश में उसे यह लड़ाई दुगुनी शक्ति के साथ लड़नी होगी।

स्त्री की कल्पना, उसकी रूचियों, उसकी प्रवृति, उसकी निर्णय क्षमता को गति मिले इसके लिए उसका स्वतंत्रचेता होना अत्यावश्यक है। इतिहास गवाह है कि पुरुष हमेशा से ही अपने बल, पौरूष और बुद्धि को अहंकार के पलड़ों में तोलता रहा है। इसलिए स्त्री चेतना के लिए चिंतन और जमीनी संघर्ष की बुनियादी आवश्यकता है। नारी शोषण से मुक्ति, पुरुष सत्तात्मक समाज से मुक्ति, आर्थिक, मानसिक और दैहिक गुलामी से मुक्ति। इन सब बिलों से मुक्ति तभी संभव है जब यह प्रतिरोध क्षमता रखती हो और वह भी सही दिशा में। दरअसल वैज्ञानिक सोच के कारण स्त्री के शोषण के खिलाफ भी उसे खड़ा करने और समझने के लिए प्रेरित किया। सामाजिक नवजागरण भी यह वातावरण बनाने में आकार तैयार किया है और ये तमाम स्थितियाँ स्त्री चेतना के लिए सकारात्मक रूप से पेश आई हैं। इसे अग्रलिखित इस कथन में देखा जा सकता है।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

"इसे नई सदी के द्वार पर उसके आसन्न भविष्य का नक्शा कहा जा सकता है। अभी इसकी आकृति पिछली सदी में खिंची रेखाओं से ही रचित है। स्त्री अब खुद इन आकृतियों में मन चाहा रंग भर पाने की सामर्थ्य अर्जित कर चुकी है ऐसा कहना शायद अभी इसी किस्त मी रस्म अदायगी मात्र हो जैसी इस किस्म की भविष्यवादी चिंताओं के संदर्भमें करने की प्रथा है ....भारतीय स्त्री की स्थिति में एक गुणात्मक परिवर्तन का आभास कहा जा सकता है कि इस कुछ अंशों में स्त्री की उस छवि में बदलाव को स्वीकृति मिलने लगी है जो पिछली सदी के तीन चौथाई हिस्से में स्त्रीत्व का प्रतिमान और स्त्री के लिए आत्मोपलब्धि का पर्याय थी।"[2]

दरअसल अँधेरे में आशा की किरण दिखने वाली इस स्थिति का मूलाधार स्त्री की चेतना और स्वावलंबन है। क्योंकि आर्थिकता का आधार स्त्री को अपनी पुरानी छवि से मुक्ति प्रदान करने में सहायक है। दूसरी ओर आत्म चेतना और संवेदनशीलता उसे मानवीय संबंधों की संकरी गलियों से निकालकर उसे समाज के सक्रिय हिस्से से जोड़ती है यानि मनुष्य और मनुष्यता और इसी हिस्से का हिस्सा हो लेने की लड़ाई लड़ती आई है स्त्री आज तक, जिसके लिए उसे अनेकानेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा है और आज भी कर रही है। क्योंकि संकीर्ण मानसिकता की जंजीरों ने उसे मानसिक रूप से घायल कर रखा है।

आत्म निर्णय की क्षमता का अभाव और भी घातक हो जाता है। इन तमाम स्थितियों से उबरने के लिए परिणामदायक नारी आंदोलनों की आवश्यकता है। – चेतना से लवरेज होकर तभी स्वतत्व और अस्तित्व मिल पाना संभव होगा एक ऐसा बेहतर समाज जहाँ उसका होना अर्थवान होगा, समाज के लिए भी और स्वयं स्त्री के लिए भी।

प्रख्यात कवयित्री कात्यायनी के शब्दों में – "नारी आंदोलनों को आज किसी एक ऐसे ही सैद्धांतिक–राजनीतिक फ्रेम की जरूरत है, जो दार्शनिक–वैज्ञानिक स्तर पर समाज विज्ञान के सापेक्षिक रूप से सार्वभौमिक नियमों के अनुरूप भी हो और आज की परिस्थितियों के भी अनुरुप हो।"[3]

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

इन आंदोलनों में यह बातें मुखर रूप से उभर कर बाहर आनी चाहिए कि एक सभ्य कहे जाने वाले समाज में जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों ही मनुष्य हैं वहाँ स्त्री पर अन्याय पूर्ण सामाजिक रूढ़ियों को थोपना सर्वथा अनुचित है। यह भी बताना बेहद जरूरी है कि स्त्री के व्यक्तित्व के निर्माण में पितृसत्ता बाधक ना हो। स्त्री के शिक्षा ग्रहण करने और उसके जीवन से जुड़े महत्वपूर्ण फैसले जो उसके विकास के लिए सहायक है उसे पूर्ण स्वतंत्रता के साथ लेने का अधिकार हो। क्योंकि आज के इस परिवर्तनगामी समय में यह अति आवश्यक है।

कहने को परिवर्तन देखने को मिल रहा है। स्त्री कहीं–कहीं आजाद दिखाई दे रही है। वह काफी फैसले स्वयं ले रही है मगर यह स्थिति ऊँट के मुँह में जीरे के समान है। इसलिए इस परिवर्तन को देखकर खुश होने जैसी कोई बात नजर नहीं आती। बल्कि हकीकत यह है कि भले ही आज की स्त्री स्वयं को कितनी ही मनस्वी, तेजस्वी और प्रबुद्ध समझ रही है और अपनी बौद्धिकता को स्थापित करने के लिए कितनी ही पुरानी परम्पराओं और जंजीरा को तोड़ा हो मगर समाज निर्माण में आज भी स्त्री की उपयोगितावादी भूमिका में कोई विशेष अंतर नहीं आया है क्योंकि इस श्आधी आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा आज भी चूल्हे चौके तक ही सीमित कर दिया गया है।

उधर सिनेमा, टीवी और अन्य मीडिया या बाजार के उत्पादों के साथ आजाद और आत्मनिर्भर दिखने वाली स्त्री की स्थिति जो दिख रही है उससे बिल्कुल उलट है। इस स्वप्निल और दिखावटी आधुनिकता के नाम पर भी स्त्री की दयनीय 'इमेज' ही सामने आ रही है। दूसरे शब्दों में कहें तो इस सारे श्खेलश में वह स्वयं एक वस्तु या उत्पाद बनकर रह गई है उल्लेखनीय है कि स्त्री की इस श्आजादी के पीछे भी पुरुषसत्तात्म खेल है यही कारण है कि स्त्री आज भी शोषण रूपी पायदान पर ही खड़ी नजर आ रही है कुछेक उपवादों को छोड़ दें तो ।

स्त्री की इस स्थिति पर नजर डालकर उसकी चेतना या स्वत्व का वह उच्चतर स्तर नजर नहीं आ रहा जिसके लिए उसके प्रयास है। वास्तविकता तो यही है कि पुरुष की तरह ही नारी भी पुरुष की तरह ही स्वतंत्र इकाई है उसकी अपनी एक स्वतंत्र

और चारित्रिक पहचान है बेशर्ते कि इस विशेषता को रेखांकित करने के ये अवसर स्त्री को मिले जिसकी वह हकदार है। मगर हकीकत यह है कि 21वीं सदी में भी स्त्री का दोयम सदियों से दर्जा उसका पीछा नहीं छोड़ रहा है। सिमोन द बोउवा के शब्दों में – "सदियों से नकारात्मक रवैया पाते रहने के कारण स्त्रियों ने अपने अधिकारों की माँग की है। स्वतंत्रता की यह मांग किसी ऊँचे मीनार पर चढ़ना नहीं है, बल्कि ये एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अपना स्थान पाना चाहती है। वे अपने भीतर के भय और हीन भाव से निकलकर समाज विकास की मुख्य धारा से जुड़ना चाहती है।"[4]

दरअसल पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने ऐसा माहौल स्त्री को दिया ही नहीं कि वह एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अपने आप को स्थापित करते हुए अपने स्वत्व और अस्तित्व के साथ मुक्ति के पायदान पर खड़ी नजर आएँ। बल्कि होना यह चाहिए कि स्त्री के बारे में पुरानी मान्यताओं से छुटकारा पाकर उसकी क्षमताओं को अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। उन तथाकथित नैतिकताओं के लबादे से उसे बाहर निकालकर खुली हवा में साँस लेने दें ताकि पग–पग पर उसे अपने आप को साबित करने में ऊर्जा मा खरचनी पड़े। पुरुष सत्ता के सामंती दृष्टिकोण और यौन शुचिता के नाम पर उसे अपमानित करना छोड़ना होगा ताकि विज्ञान सम्मत सोच और सिमोन की समाज विकास की मुख्य धारा से जुड़कर वह इसकी चेतना का भरपूर उपयोग कर सके जिससे उसे उसका स्वत्व और अस्तित्व मिल सके और उसकी पहचान दोयम दर्जे से मनुष्य में तबदील हो सके।

लेकिन इस प्रक्रिया में उसे अनेकानेक परिस्थितियों और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है क्योंकि परिवार और समाज के कई घटक है। परिवार में मुख्य रूप से पिछली पीढ़ियों के आरोपण है। उनकी संकीर्ण मानसिकता की जंजीरें हैं। परिवार, समाज के साथ–साथ माँ और सास की भी व्यक्तिगत अपेक्षाएँ है और इन सबके बीच नारी की दोहरी मानसिकता है। आत्म निर्णय की क्षमता का अभाव है खुद को खुद से ही खतरा है। अतः स्वयं से स्वयं की भी अपेक्षाएं हैं सबसे पहले उनको समझना जरूरी है अपनी खुद की पहचान करना जरूरी है क्योंकि परंपरागत से आधुनिकता की ओर

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

बढ़ रही स्त्री के साथ चेतना भी लिपटी हुई है और इस आधुनिकता का अर्थ है – अपनी पहचान। स्त्री का अपने बारे में एक स्पष्ट अभिमत क्योंकि यही अभिमत उसे उसके व्यक्तित्व विकास की ओर ले जाता है।

उल्लेखनीय है कि हमारे यहाँ आधुनिकता को भी गलत संदर्भों से जोड़ दिया जाता है। इसे विकास का सोपान न मानकर आयातित संस्कृति का अधूरापन, पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण, भाषा में बनावटीपन मान लिया गया है और स्त्री को परंपरा और आधुनिकता के बीच एक विचित्र वस्तु इसके साथ–साथ स्त्री के शिक्षित हो जाने का अर्थ विदेशी भाषा, विदेशी रहन–सहन, विदेशी परिधान, पुराने का नकार और आधुनिक का आकर्षण भर मान लिया जाता है जो स्त्री के विकास के लिए सर्वाधिक घातक है। इन सबके बीच जातिय, राष्ट्रीय संस्कृति के अनुसार सही और गलत का निर्णय, व्यक्तित्व और संकीर्ण मानसिकता से परे उदारवादी दृष्टिकोण देना ही वस्तुतः शिक्षा और आधुनिकता के अर्थ को समाहित करता है जो कि मनुष्य की चेतना का आधार है। यही चेतना संस्कार रूप में छनकर व्यक्ति को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य से जोड़ती है व्यक्ति निरंतर आत्म साक्षात्कार करता हुआ यथार्थ के स्वरूप को पहचानता रहता है।

मगर आज इक्कीसवीं सदी की चौथाई तक आते–आते भी स्त्री इन सब हकीकत से कोसों है। यह विडंबना ही कही जा सकती है कि स्त्री को इस हकीकत से दूर रखने के लिए स्त्री खुद नहीं बल्कि यह पुरुष प्रधान समाज और पौरूषीय अहंकार से लिबड़ी हुई यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था पूरी तरह से जिम्मेदार है। वह उसकी मानसिकता और देह पर पूर्ण नियंत्रण चाहती है। किसी उपनिवेशक की तरह। अग्रलिखित उदाहरण से यह स्थिति पूर्णतः स्पष्ट होती है– "स्त्री को हमेशा से 'वस्तु' या 'चीज' मानने वाली पितृसप्तात्मक व्यवस्था ने कभी यह सोचने की जरूरत ही नहीं समझी कि स्त्री देह में भी इच्छा और कामना की ऐसी रेशमी शिराएँ होती हैं जो किसी के प्रेम में तनना सिकुड़ना चाहता है। स्त्री तन–मन को धर्म और नैतिकता की कमरपेटियों में बाँधकर रखने वाला पुरुष– समाज उसे आनंद और भोग के साधन से ज्यादा और कुछ न ही

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

मानता ओर विडंबना यह कि सदियों से अपने पति की सेज इस अनवरत खेल में सजाने वाली स्त्री खुद को भी उसी दृष्टि से देखने लगती है। हमेशा से पिसती आ रही स्त्री अब इस खेल से मुक्ति चाहती है।"[5]

मगर यह स्वप्निल मुक्ति शायद इतनी आसान नहीं है। ना तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था इतनी आसानी से स्त्री को इस जाल से मुक्त होते देखना चाहती और चेतना का वह स्तर जहाँ एक झटके से तमाम बेड़ियाँ तोड़ दें इसके लिए स्त्री भी संभवतः तैयार नहीं है इसके पीछे स्त्री—पुरुष की एक पारंपरिक सोच यह भी है कि भारतीय संदर्भ में नारी का मातृरूप सबसे ज्यादा पूजित है, अतः मात्र नारीत्व और देह प्रसाधन की कृत्रिमता भारतीय समाज में सम्मानित नहीं हो पाती जितना स्त्री का मातृत्व रूप।

विडम्बना यही है कि भारतीय समाज में नारी का था तो देवी पूज्य और या कुल्हा वाला रूप इन दोनों ही रूपों में इतिरंजना है क्योंकि व्यवहार में आते ही ये दोनों रूप हीने में चले जाते है। मगर स्त्री का इंसानी रूप जिसके लिए वह संघर्षरत है वह उभरकर सामने नहीं आ रहा है। अपने इसी इंसानी रूप की स्वीकोशक्ति चाहती है स्त्री जबकि यथार्थ यही है कि स्त्री के वजूद की निर्मिती का रास्ता इतना आसान नहीं है।

दरअसल मानव समाज का इतिहास महिलाओं को श्सत्ताश, श्प्रभुती और शक्ति से दूर रखने का इतिहास है, इसलिए प्रत्येक देश, काल, जाति, धर्म में महिलाओं को पुरुषों के बराबर ना आने देने की संरचनात्म और सांस्कृतिक बाध्याताएं बनाई गई है। इन्हीं संरचनाओं और बाध्यताओं से मुक्ति के लिए स्त्री चेतना के स्वरों की गूँज आवश्यक है। इसी आत्म सजगता और आत्म चेतना का परिणाम है अस्तित्व बोध वर्तमान के बदलते संदर्भों में स्त्री को एक इकाई के रूप में अपने होने के अहसास से ही अस्तित्व की पहचान होती है। मगर समाज में व्यवहारिक रूप में देखे तो सामंती वैचारिकता या पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी मुक्ति का कोई आधार नहीं है और उसकी चेतना—संपन्नता को विशेष कोशिशों के द्वारा आगे नहीं आने दिया गया है।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

मगर इन धीरे–धीरे बदलती सामाजिक व्यवस्था में स्त्री के प्रयासों, उसकी लड़ाई और आंदोलनों के माध्यम से एक सामुदायिक आधार बना है। मानवीय सोच के समर्थन में अस्मिता की सोच के प्रति चीजें बदलने लगी है।

बदलाव की इस सोच के पीछे शिक्षा सबसे बड़ा कारण है। स्त्री जैसे–जैसे शिक्षित होते गई अपने अधिकारों और वजूद के प्रति भी वह सचेत होती गई। इसी सचेतता में उसे एक स्वतंत्र इकाई होने का आभास हुआ कि आर्थिकता भी उसकी परतंत्रता का एक बड़ा कारक है इसलिए उसने पितृसत्तात्मक इस व्यवस्था से संघर्ष करके शिक्षा के रास्ते को अपनाया और स्वावलंबी होने की तरफ कदम बढ़ाया जिससे आर्थिकता से जुड़े जीवन के निर्णय लेने में वह सक्षम होने की ओर अग्रसर होने लगी– भले ही यह गति बेहद धीमी ही क्यों ना रही हो।

"शिक्षा दवारा प्राप्त स्वाभिमान की भावना उसे पति पर बोझ होने की स्थिति स्वीकार नहीं करने देती। इसलिए वह घर की सजावट की अपेक्षा नौकरी चुन लेती है। इससे उसे अपने को प्रयोग में लाने का अवसर मिलता है और सामाजिक उपयोगिता का संतोष भी।"[6]

अगर यह परिवर्तन संकेतात्मक या प्रतीकात्मक है। आधारभूत परिवर्तन आने में अभी और समय लगेगा। क्योंकि घर की देहरी के बाहर के भी अपने खतरे हैं। भारतीय समाज सोच के स्तर पर स्त्री को अभी भी देह के अलावा स्वीकार नहीं कर रहा है यह उसकी बीमार मानसिकता का परिचय ही है। यहाँ भी ऐसी ही स्थितियाँ है। वह या तो घर की चार दीवारी में रहे और किसी आधुनिक की तरह बाहर की दुनिया से राबता स्थापित करती है तो वही बहशी दुनिया उसे अपने इशारों पर संचालित करने लगती है। उसका नियामक बनकर सार्वजनिक जीवन की अपनी दुश्वादियाँ है। उसकी चमक–दमक के पीछे स्याह अँधेरा है। खुले बाजार में उपभोक्ता संस्कृति के बीच अगर सबसे ज्यादा इसकी कीमत चुका रही है तो वह स्त्री ही है। बड़ी–बड़ी विज्ञापन कंपनी मॉडलिंग के नाम पर देह–प्रदर्शन की भारी कीमत देकर उसे छद्म आधुनिकता की घेर बंदी में जकड़ रही है। फिल्मों के व्यावसायिक दृष्टिकोण ने उसे श्सेक्स सिंबलश बनाकर

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

पेश किया तो समाज के एक बड़े हिस्से ने उसे हिकारत की दृष्टि से देखना शुरू कर दिया और उस बाजार में वह ना–नुकर करती है तो उसे पुरातन पंथी कहकर उस काम से ही छुटकारा दिला दिया जाता है। इस दुरुह स्थिति से निकलने के लिए आज की स्त्री के पार अगर सुदृढ़ इतिहास या मजबूत संगठन नहीं है तो कम से कम उसकी वर्तमान लड़ाई की एक ठोस रूपरेखा तो होनी ही चाहिए क्योंकि कोई भी परिवर्तन रातो पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों को अनदेखा करते हुए स्त्री चेतना और स्वतवः के लिए संघर्षरत है। अतीत से निकल कर सुनहरे वर्तमान के बनने के लिए निरंतर प्रयासरत है और अपने लिए ठोस धरातल तलाश रही है। यह उम्मीद करते हुए कि इस विषय पर पुरुष को भी अपने दंभ और दर्प के खांचों से बाहर आना है? दिमाग से सोचने की जरूरत है। मगर स्थापित पुरुष सत्ता की नींव इतनी जल्दी हिलने वाली नहीं है। प्रभा खेतान के शब्दों में "अधिकतर पुरुष उदारता का मुखौटा भले ही डाल लें किंतु वे पुरुष पहले हैं, मानवतावादी बाद में।"[7]

प्रभा खेतान की यह धारणा ऐसे ही नहीं बनी बल्कि इस धारणा को पुष्ट करने वाले उदाहरण हमारे समाज में पग–पग पर देखने को मिलते है। मगर स्त्री को इन सबसे पार जाना होगा भले ही संघर्ष करने या फिर मैत्री भाव से

बहरहाल स्त्री अपने स्वत्व और अपने वजूद के लिए जिस संजीदगी से प्रयासरत और संघर्षरत है उसके परिणाम देर–सवेर सकारात्मक होते– ऐसा स्त्री विमर्श के ताने बारे में बुने जाने वाले स्त्री के बहरंगी वजूद के सपनों से साफ झलकता है। भले ही यह सब समग्र रूप से संभव ना हो पाए मगर छोटे–छोटे अंशों में ही सही, एक दिशा पकड़ रहे हैं और वह दिशा जिस ओर जा रही है वहाँ मील का पत्थर एक ना एक दिन साबित होना तय है।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 01, (January-March 2025)

संदर्भ

1. स्त्री जागरण की दिशाएँ, डॉ० सुधा बालकृष्णन, नारी अस्तित्व की पहचान, पृ0 69, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2. अस्मिता–विमर्श का स्त्री स्वर, अर्चना वर्मा, मेधा बुक्स, दिल्ली, पृ0 59
3. हंस, अगस्त 1991, पृ0 53
4. सिमोन द बोउवा स्त्री उपेक्षिता (अनुवाद प्रभाव खेतान) पृ0 67, हिंद पॉकेट बुक्स
5. विखंडन और पुनर्गठन के बीच भूमंडलोत्तर स्त्री कहानी, राकेश बिहारी, आजकल मार्च 2016, नई दिल्ली, पृ० 11
6. किरण बजाज, हिंदी कहानी नौकरीपेशा स्त्री की संक्रांत स्थिति, हिंदी कहानी दो दशक की
7. नारीवाद का भारतीय दृष्टिकोण, समपांतर–अक्तूबर 2003, दिल्ली, पृ0 19